ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

भारत में मन्दिर निर्माण की आधार योजना

MkO i:"kkRre flg
एवं एसोसिएट प्रोफेसर इतिहास विभाग
inhi dekj flg
शोध छात्र इतिहास विभाग

धार्मिक स्थापत्य की दृष्टि से मन्दिर वास्तु की कला भारतीय कला के इतिहास में सर्वाधिक विशिष्ट एंव महत्वपूर्ण है। भारत में मन्दिर निर्माण की परम्परा बहुत प्राचीन है। यहाँ मन्दिर निर्माण में अनेक शैलियों का प्रयोग हुआ है। वस्तुतः विभिन्न स्वरूप प्रदान किया। बाद में वही स्थापत्य की विशेषता या पहचान हो गई और शिल्प की शैली के रूप में व्यवहृत होने लगी। अतएव मन्दिरों की निर्माण परम्परा को दृष्टि में रखकर ही उसका अनुकरण–अनुसारण किया गया और वह शैली विशेष के रूप में पहचानी गई। भारत वर्ष में निर्मित समस्त मन्दिर समूह को यदि एक दृष्टि में देखें–परखें तो मुख्य रूप से जो विशेषताएँ पाते हैं, उसके आधार पर उन्हें तीन शैलियों में विभक्त किया गया है, वे प्रमुख तीन शैलियाँ हैं– नागर, द्रविड और बेसर।

नागर शैली – 'नागर' शब्द नगर से बना है, जिसका अर्थ है 'पुर'। अतः पुर या नगर से सम्बन्धित होना ही 'नागर' है। कौटिल्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में नगर निर्माण के प्रसंग में मन्दिरों का स्थान विशेष रूप से निर्धारित किया है। उनके ग्रन्थ में स्पष्ट उल्लेख है कि नगर के किस भाग या दिशा में किस देव मन्दिर का निर्माण करना चाहिए। वास्तुशास्त्र के ग्रन्थो में विस्तार से नगर संरच्ना का उल्लेख किया गया है। उसी प्रसंग में मन्दिरों की स्थिति पर भी सम्यक चर्चा की गई है। इस प्रकार के नगर स्थिति के अनुसार निर्मित मन्दिर ही नगर होते है। इस शैली को आर्य शैली भी कहते हैं क्योंकि ये अधिकांश मध्य भारत में मिलते है, जहाँ आर्यो की बस्ती थी और इसे आर्यावर्त कहा जाता हैं। वर्तमान में हमें हिमांचल प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बंगाल आदि राज्यों के विभिन्न भागों में मिलता है भारीर के अंगों की तरह नीचे से ऊपर की ओर क्रमशः बांटे गये हैं। मन्दिर के विभिन्न भागों में सबसे पहले 'पाद' अर्थात 'जगती' या चबूतरा बनाया जाता है। उसके बाद 'मसूरक' (नींव और दीवाल के बीच का भाग), तत्पश्चात् 'जंघा' अर्थात् दीवार, 'शरीर' (शिखर का उठता भाग), 'ग्रीवा' (शिखर का वह भाग जहाँ रेखाएं अन्दर को मुड़ती हैं), 'मस्तक' या 'कपोत' (शिखर का ऊपरी भाग), 'आमलक' जहाँ शिखर में खरबुजिया आकृति बनी होती है तथा अन्त में आमलक के ऊपर 'यष्ठि' (दण्ड) और 'पताका' (देव प्रतीक ध्वज) होता है। नागर शैली में मन्दिर के मुख्य द्वार से अन्दर तक भी विभिन्न भागों के नाम दिये गये हैं। मन्दिर में करते ही पहले एक छोटा बरामदा होता है जिसे 'अर्द्धमण्डप' कहते हैं जिसके बाद प्रवेश द्वार होता है। इसके उपरान्त अर्द्धमण्डप से आगे बढ़ने पर हमें 'मण्डप' मिलता है। इसे 'जगमोहन' भी कहा जाता है क्योंकि यहाँ देवता के उपासक इकट्ठा होकर पूजा करते है। तत्पश्चात् 'अन्तराल' आता है जो गर्भगृह और मण्डप के बीच का हिस्सा होता है। इसे बाद जिस कक्ष में देवताओं की मूर्ति स्थापित होती है उसे गर्भगृह कहते है। इसे 'देउल' भी कहा जाता है और गर्भगृह के चारों ओर परिक्रमा करने के लिए एक पतला मार्ग होता है जिसे 'प्रदक्षिणापथ' कहा जाता है। इस प्रकार नागर शैली के मन्दिर सभी भाग सर्वत्र एक दूसरे से जुड़े रहते है। शिखर मन्दिर का एक आवश्यक अंग है। शिखर की शैली के आधार पर ही मन्दिर शैली के प्रकार की वास्तविक पहचान करते है। नागर शैली के शिखर पर निचला आधार 'चौकोर' होता है। उसके ऊपर क्रमशः घटते क्रम में यह ऊपर की ओर उठता जाता है चूँकि यह मुख्यतया गर्भगृह पर होता है अतः ऐसा प्रतीत होता है कि यह गर्भगृह का ही एक अंग है। कभी–कभी शिखर से लगे चतुर्दिक –लघु शिखरों' का भी निर्माण

किया जाता है। और जिस ऊँचाई पर लघु शिखर जाकर समाप्त होता है इसी ऊँचाई से दूसरा लघु शिखर पुनः प्रारम्भ हो जाता है। और मुख्य शिखर की उस ऊँचाई तक जाते है जहाँ से 'ग्रीवा' प्रारम्भ होती है। इन लघु शिखरों को 'अंग शिखर' या 'उरूश्रृंग' कहते हैं। इन लघु शिखरों में भी मुख्य शिखर की भांति चौरस आधार, जिसे 'ग्रीवा' या 'केकी' कहते हैं, होता है। उसके ऊपर शीर्ष भाग, 'आमलक तथा यष्टि' और 'पताका' होती है। नागर शैली के मन्दिरों का प्रवेश द्वार 'आयताकार' होता है जिसके ऊपर द्वार पर 'गजलक्ष्मी' की आकृति किनारे की भुजाओं पर एक ओर 'मकरवाहिनी गंगा' तथा दूसरी ओर 'कर्मवाहिनी यमुना' की आकृतियां उकेरी गई होती हैं।

द्राविड़ शैली – द्रविड़ शब्द भौगोलिक एवं क्षेत्र दोनों के लिए प्रयुक्त होता है किन्तु यहाँ कला के क्षेत्र में द्राविड़ शैली वह है जो द्राविड़ देश में ही मुख्यतः विकसित हुई है। यह वह शैली है जिसमें कृष्णा, तुंगभद्रा और नासिक से कुमारी अन्तरीप के मध्य बने द्राविड़ शैली के मन्दिर कहलाते है। ऐसे मन्दिर तज्जौर, मथुरा, कांची आदि में है। इन मन्दिरों को मुख्यतः चोल, पाण्डेय, पल्लव राजाओं ने बनाया है। ये मन्दिर अकेले या मन्दिर परिसर (समूह) के रूप में होते है। द्राविड़ मन्दिर का शरीर अर्थात् निचला भाग प्रायः वर्गाकार होता है, 'मस्तक' गुम्बज के आकार का छपहला या आठ पहला होता है। इनमें विशाल 'गोपुरम्' विशाल दृढ़ एवं दर्शनीय प्राचीन प्रांगण, तालाब, उद्यान आदि ही इनका वैशिष्ट्य है। ये अत्यधिक ऊँचे, अतिशय अलंकृत और अत्यन्त रमणीय शिल्प सौन्दर्य से युक्त होते हैं। द्राविड़ शैली के मन्दिर नागर शैली के मन्दिरों से पूर्णरूपेण भिन्न होते हैं। इन मन्दिरों के 'गर्भगृह' में मुख्य देवता की मूर्ति स्थापित होती है। उसके ऊपर का भाग 'विमान' कहलाता है जो सीधा 'पिरामिड' की तरह होता है। उसमें भी अनेक मंजिले होती है। 'मस्तक' पीछे या गुम्बज के आकार का होता है। ऊँचा मन्दिर एक ऐसे विशाल प्रांगण से घिरा होता है जिसमें छोटे–बड़े अनेक मन्दिर, कमरे, हाल, तालाब आदि होते है। आंगन का मुख्य द्वार 'गोपुरम' कहलाता है, जो बहुत ऊँचा, शिल्प सौन्दर्य से युक्त तथा प्रायः प्रधान मन्दिर के शिखर को छिपा लेने वाला होता है। 'प्रांगण', 'प्रदक्षिणा', भूमि', गोपुरम' कहलाता है, जो बहुत ऊँचा, शिल्प सौन्दर्य से युक्त तथा प्रायः प्रधान मन्दिर के शिखर को छिपा लेने वाला होता है। प्रांगण, 'प्रदक्षिणा', 'भूमि', गोपुरम', 'प्राचीर' आदि की असाधारणता के कारण ही इस शैली के मन्दिर बहुत विस्तृत भूमि पर फैले होते हैं। नागर शैली में ठीक इसके विपरीत चौकोर गर्भग्रह के ऊपर दूर ऊँचे मीनार की भांति के होते है। शिखर की रेखाएं तिरछी और चोटी की ओर झुकी होती है। शीर्ष उनका आमलक के अभिप्राय से मण्डित होता है। द्राविड़ शैली माना जाता है कि 6ठीं शदी के प्रारम्भ में शुरू हुई, जब मद्रास से 35 मील दक्षिण में मामल्लपुरम का सात पगौड़ा वाला धर्मराजस्य निर्मित हुआ। इनका विकास या इस शैली का चरमोत्कर्ष 16वीं सदी में हुआ। इस शैली के विकसित स्थापत्य के मन्दिरों में ढके बड़े–बड़े बरामदे, भीतर बाहर दीवारों पर मूर्तियों का अंकन अलंकरण तथा दुर्ग जैसा स्थापत्य होता है। नागर शैली की भांति द्राविड़ शैली में भी मन्दिरों के अंग होते हैं मन्दिर में प्रवेश करने पर क्रमशः 'भोगमण्डप' अर्थात मन्दिर में भोग लगाने की सामग्री रखने के लिए यह कक्ष होता है, 'मण्डप' अर्थात नागर शैली के मन्दिरों के जगमोहन की तरह इसमें उपासक इकट्ठा होकर पूजा करते होगें, 'गर्भगृह'– नागर शैली की तरह इसमें प्रमुख देवता की मूर्ति पधरायी जाती है। अर्थात् स्थापित करके प्राण प्रतिष्ठा की जाती है। 'नन्दीमण्डप अर्थात् शैव मन्दिरों में नन्दी के लिए एक ओर मण्डप इस नाम का हाता है जिसमें नन्दी की मूर्ति रखी जाती है। 'महामण्डप' यह प्रदक्षिणा पद का काम करता है। गर्भगृह से लेकर भोग मण्डप के चारों ओर यह बरामदे की तरह स्तम्भों पर बना घेरा होता है। इसी की दीवारों में थोड़ी–थोड़ी दूरी पर वातायन बनाया गया है इनका आधार वर्गाकार होता है। द्राविड़

ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

मन्दिर की दीवारों को क्षैतिज लहरदार रेखाओं द्वारा सर्वत्र विभक्त नहीं किया गया है। जैसा नागर मन्दिर में। इस प्रकार की रेखाएँ बनी भी है तो बहुत ही कम मन्दिर में।

बेसर शैली – बेसर शैली 'नागर' और 'द्रविड' शैली का मिश्रित रूप हैं, दूसरे शब्दों में 'बेसर शैली' उत्तर दक्षिण का मिश्रण है। इस शब्द का अर्थ है वर्णसंकर, दो भिन्न जातियों से जन्मा। कालि कागम' के अनुसार यह बिन्यास (खाका या प्लान) में तो द्राविड़ शैली का होता है किन्तु क्रिया और रूप नागर शैली का यही कारण है कि वृहच्छिल्प शास्त्री ने इन्हें 'मिश्रक' कहा है। समरागण–सुत्रधार में इसे 'वाराढ' या (वाराड) कहा है। इसका कारण सम्भवतः यह है कि विन्ध्य और तुंगभद्रा (कृष्णा) के मध्य के भूखण्ड को, जो इसकी प्रसार भूमि एवं केन्द्र है, विदर्भ–बराड तक को सोमावधि तक यह फैले थे। डा0 भगवतशरण उपाध्याय ने अपने विशिष्ट ग्रन्थ 'भारतीय कला का इतिहस' में लिखा है कि ''इसकी प्रसार भूमि विन्ध्य पर्वत और अगस्त्य (नासिक के समीप) अथवा विन्ध्यांचल और कृष्णा (तुंगभद्रा) के बीच है। बेसर शैली के मन्दिर नागर और द्राविड़ क्षेत्रों के बीच में लिखते हैं। इस भूखण्ड को साधारण रूप से 'दुन' कह सकते है। 'समरागण सूत्रधार' में इसी से बेसर का उल्लेख उसके दूसरे नाम 'वाराद' (अथवा बाराह) से हुआ है। वाराढ, बराढ़ को सूचित करता है। इससे बेसर की यह भौगोलिक संज्ञा है। बराड प्राचीन विदर्भ का विस्तार नर्मदा से कृष्णा तक है।

बेसर शैली को चालुक्य शैली भी कहते है। बेसर के सुन्दरतम नमूने मैसूर राज्य में हलेबिद और बेलूर में माने जाते है। इस शैली में मन्दिरों का आधार 'ऋण चित्रार्धी' से भरा होता है। विमान शिखर छोटा और फैले हुए कलश होते है। आसाधारण 'अलंकरण, 'संघन मूर्तमण्डन और शिल्प सौन्दर्य' इनकी विशेषता होती है। कई बार दो–दो मन्दिर जुड़े भी होते हैं। कलाकार एवं मूर्ति प्रदाता प्रायः अपना नाम भी नीचे दिया करते हैं। इससे उनके स्थापत्य का इतिहास जानने में सुविधा होती है। चालुक्य नरेशों ने मिश्रित बेसर शैली को प्रोतसाहन दिया था। अतएव भारत को शैलियों की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त करते हैं– ''हिमाचल से विन्ध्याचल के बीच नागर, कृष्णा तक मिश्रित बेसर। अनेक बार जाति विमानों के निर्माण में नागर द्राविड़ और बेसर तीनों शैलियों का एक साथ योग हुआ है। मिश्रित शैली के मन्दिर परवर्ती चालुक्य शासकों ने कन्नड़ जिले में और होयसल राजाओं ने मैसूर में बनवाए। बेसर शैली के संरक्षक राजा नागर और द्राविड़ शैली की उन्नति एवं विकास के बाद ही कला प्रेमी के रूप में स्थापित हुए। इसी कारण उक्त दोनो के मिश्रण से तीसरी शैली ने जन्म लिया। ::पूर्व चालुक्यों के समय द्राविड़ विन्यास और नागर क्रिया तथा उत्तर चालुक्य काल में नागर विन्यास और द्राविड़ क्रिया रूपायित हुई।'' उक्त मिश्रण के परिणामस्वरूप ही बेसर शैली का शिल्प विशिष्ट हो गया। मन्दिर वृक्षायत (वृक्षों के समान फैले–फैले) होते थे। ये प्रायः इयाश्रवृन्त अर्थात् उनके आमने–सामने के दो पहल सीधे होते थे ओर दूसरे दोनों झुके हुए। वे नीचे ग्रीवा तक वर्गाकार भी होते थे और ऊपर वृत्ताकार जिससे गोलाकार शिखर उन पर विराज सके। डॉ0 भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार भले ही शैलियों का सामान्य रूप से मिश्रण हुआ हो किन्तु भारत की मन्दिर शैली की दिशा निश्चित ही रही। जैसे उत्तर में नागर शैली के मन्दिर, दक्षिण में द्राविड़ शैली के मन्दिर और बीच में बेसर शैली के मन्दिर।श्री उपाध्याय के अनुसार उत्तर में इस प्रकार तीनों शैलियों से संयुक्त निर्माण की पद्धति नहीं रही है। उक्त तीनों विशिष्ट शैलियों से स्थानीय शाखाएं फूटी और प्रान्तीय बन गयी। फिर भी वे अपनी प्रधान शैली के मुख्य लक्षणों का निर्वाह करती रहीं। यही कारण है कि उत्तर–दक्षिण में मन्दिरों को देखते ही शैली के मुख्य लक्षणों का निर्वाह करती रहीं। यही कारण है कि उत्तर दक्षिण में मन्दिरों को देखते ही शैली विशेष को पहचान लिया जाता है। बेसर शैली के इन मन्दिरों का

ISSN-2394-6326
Journal de Brahmavart

स्वरूप कुछ विशिष्ट ही होता है। विमान शिखर छोटा, फैले कलश, मूर्तनों का आधिक्य, अलंकरण परम्परा का बाहुल्य यह इनकी विशेषता है। दक्षिण में मिलने वाले इन मन्दिरों के शिल्प को उन्नति के शीर्ष पर पहुंचाने का भागीरथ प्रयास चालुक्यों और होयसलों ने सर्वाधिक किया है। बेसर शैली के मन्दिर प्रकार विहीन है। इसकी आधार योजना में अर्द्धमण्डप, मण्डप और विमान प्रमुख है। गर्भगृह की आधार योजना मिश्रित हैं। कुछ गर्भगृह आयताकार हैं और कुछ अष्टभद्र योजना में निर्मित है। इन मन्दिरों का मुख्य द्वार पीछे की ओर होता है आगे की ओर नहीं। इसमें आगे की ओर एक स्तम्भ युक्त बरसाती होती है। बेसर शैली के मन्दिरों के अन्दर अंधेरा होता है। इस दोष के परिहार के लिए इन्होने मन्दिर की दिवारों को बड़ा ही अलंकृत किया है। इनके शिखर की सतहों पर क्षैतिज रूप से अनेक ढलाइयां बनी है। ऊपर भी ढलाइयों की अनेक परतें बनी है। ऊपर की ओर ये घंटानुमा बने है जिनमें कई मोढ़ होते हैं। मन्दिर के प्रवेश द्वार अत्यन्त अंलकृत किये गये है यहाँ नवीन पद्धति में अर्द्धस्तम्भ बने हैं। इस प्रकार बेसर शैली का विकास हुआ है।